Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540

मध्यकालीन भारत में नारी की स्थिति एवं वर्ण व्यवस्था

Pranaw Kumar[1]* Dr. Dewan Nazrul Quadir[2]

[1] Research Scholar

[2] Assistant Professor, CMJ University, Shillong, Meghalaya

सार – *विविध स्तरों पर उपसामन्तों की वृद्धि के कारण भूमि से प्राप्त होने वाली आय अनेक छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो जाती थी जिससे दोनों छोरो पर स्थित कृषक और राजा की स्थिति दुर्बल हो गई और बिचौलियों के हाथो में आय चली जाने के कारण उन्हें क्षति उठानी पड़ती थी। कृषकों को भूमि करके अतिरिक्त अन्य कई प्रकार के कर देने पड़ते थे।जिस प्रकार से राज्य की राजनीति धरातलीय स्तर पर विस्तृत हो रही थी और गण-संघ राजनीतिक व्यवस्था का विनाश हो रहा था उसी प्रकार आर्थिक स्तर पर धरातलीय रूप में ग्रामीण कृषक वस्तियों का विस्तार हो रहा था यद्यपि कि नगरीय अर्थव्यवस्था या सिक्कों की अर्थ व्यवस्था के उत्कर्ष की प्रवृत्ति भी मिलती है। वर्ण जाति पर आधारित सामाजिक व्यवस्था का भी धरातलीय विस्तार असीमित था यद्यपि सामाजिक ढांचे में कुछ परिवर्तन भी लौकिक आधार पर हो रहे थे। भूमिदानों एवं उपसामंतीकरण के फलस्वरूप राजनीतिक सत्ता का जिस प्रकार श्रेणी-विन्यास हुआ उसका प्रतिविश्व सामाजिक-आर्थिक जीवन में भी देखा जा सकता है।*

कुंजी शब्द – *राजनीतिक व्यवस्था, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र, पूर्व मध्यकाल*

----------X----------

परिचय

भूमिका

इतिहास मानवीय विकास की एक अनादि एवं अनन्त धारा है और उस अनादि और अनन्त धारा को युगों में विभाजित करना अस्वाभाविक ही नहीं दुष्कर भी है परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिये इतिहास को युगों या कालों में विभाजित करना हमारी वौद्धिक विवशता है। प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में "पूर्व मध्यकाल में सामाजिक-आर्थिक संगठन" (उत्तर भारत के सन्दर्भ में): एक अध्ययन की आधारशिला राजनीतिक इतिहास की पृष्ठ भूमि में त्रिसत्तात्मक संघर्ष से प्रारम्भ कर राजनीतिक सामंतवाद के उत्कर्ष (1000-1200 ई0) तक किया गया है। जिसमें आठवीं सदी के मध्य से तुर्कों द्वारा दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पूर्व की सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है। 750 से 1000ई0 के काल को 'तीन राज्यों में सामंती राजनीति' एवं '1000 से 1200ई0 के काल को 'राजनीतिक सामंतवाद का उत्कर्ष काल' कहा गया है।

जाति व्यवस्था की आलोचना एवं विरोध

हमण तथा अन्य व्यक्त पूर्व मध्यकाल में हमें पूर्ववर्ती यह उदारवादी विचारधारा भी मिलती है कि जाति का निर्धारण दृष्टिकोण एवं कार्य के आधार पर होना चाहिए। ग्यारहवीं सदी के जैन आचार्य अमितगति का अपने ग्रन्थ धर्म परीक्षा में कहना है कि जाति का निर्धारण व्यक्तिगत आचरण से होता है और ब्राहमण तथा अन्य जातियां निश्चित नहीं हैं। शुक्रनीति में भी यही विचार व्यक्त किया गया है। अन्य जैव ग्रन्थ कथा कोश प्रकरण में ब्राहमणों की जातीय श्रेष्ठता को चुनौती दी गयी है जो निःसंदेह पुराहितों की प्रतियोगिता के कारण है। पूर्व मध्यकाल में राजस्थान एवं गुजरात में जैन धर्म का पर्याप्त प्रभाव था और रूढ़िवादी विचारों से पराजित भी हो चुका था किन्तु सम्पूर्णतः इसके जाति सम्बन्धी विचार परम्परावादी हिन्दू विचारकों की तुलना में उदार थे।[40]

अपने ग्रन्थ दर्पदलन में क्षेमेन्द्र ने कुल जाति-दर्प अर्थात् कुल एवं जाति के अभिमान की निन्दा की है और इसे सामाजिक रोग कहा है तथा स्वयं अपने को अन्य लोगों की तरह एक चिकित्सक माना है। सिद्धाचार्यों एवं शाक्त सम्प्रदायों ने भी जाति व्वयस्था का विरोध किया है और कभी-कभी ब्राहमणों के विशेषाधिकारों की आलोचना भी की है। इन सम्प्रदायों ने

www.ignited.in

समाज के निम्नवर्गीय लोगों के धार्मिक आवश्यकताओं, हितों एवं महत्वाकाक्षाओं पर विशेष बल दिया है। यद्यपि बौद्ध धर्म अपने पतन की ओर अग्रसर था। एक बौद्ध भिक्षु लटक मेलक ने जाति व्वयस्था एवं अस्पृश्यता को निरर्थक बताया है।

'नौषधीयचरित' में चार्वाकों द्वारा जाति एवं कुल के वर्ग एवं धोखेबाजी का उल्लेख करते हुये चित्रित किया गया है। प्रतीकात्मक नाटक प्रबोध चन्द्रोदय में चार्जाकों एवं तान्त्रिकों को जाति विरोधी एवं महामोह का समर्थक बताया है। हेमचन्द्र के त्रिषष्टि-शलाका-पुरूष -चरित में भी लगभग ऐसी ही स्थिति का वर्णन है। वृहद्धर्म पुराण से स्पष्ट ज्ञात होता है कि तांत्रिक बौद्ध धर्म, तांत्रिक शैव धर्म एवं तांत्रिक शाक्तधर्म ने बंगाल एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में वर्णाश्रम धर्म की स्थिति को शोचनीय बना दिया था।

आठवीं सदी के एक गुर्जर प्रतिहार अभिलेख के अनुसार कलियुग के प्रभाव से वर्णाश्रम धर्म, व्यवस्थोन्मूलित हो गया था। ग्यारहवीं सदी में शंकराचार्य का कथन है कि वर्ण एवं आश्रम धर्म अशान्त स्थिति में हैं। ग्यारहवीं सदी के धर्म पाल ने वर्णाचार विप्लव का उल्लेख किया है। क्षेमेन्द्र कहते है कि कलियुग में चातुर्वर्ण्य ऊपर-नीचे हो गया था, शूद्र एवं वैश्य उच्च वर्गों के व्यवसाय करते थे, ब्राहमण निम्न व्यवसाय करने लगे थे और वर्णसंकर में वृद्धि हो रही थी।

पूर्व मध्यकालीन नारी की स्थिति

पूर्व मध्यकालीन भारतीय महिला कन्या, पत्नी, माता एवं विधवा के रूप में भरणीय, पोषणीय एवं रक्षणीय थी, किन्तु कोई न कोई पुरूष उसकी देख-रेख करता था और वह अभिभावक के नियंत्रण में रहने को बाध्य थी। वर्ण विभाजित पितृ प्रधान समाज में महिलाओं को सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक एवं आर्थिक दृष्टि से पराधीन करने के प्रयत्न किये गये तथा उनके अधिकारों को समान नहीं माना गया। सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में उन्हें कुछ अधिकार दिये गये किन्तु कुछ ऐसी स्वतन्त्रतायें थी जिनसे स्त्रियां वंचित थीं। स्त्री और पुरूषों के निजी और सामाजिक आचरण की अच्छाई-बुराई के मापदण्ड भिन्न थे। व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर नारी पर प्रभुत्व और अधिकार स्थापित कर उसे अधीनस्थ करने का प्रयत्न किया गया जो सामन्ती मानसिकता का लक्षण है।[44]

आर्थिक परिदृश्य

पूर्व मध्यकाल उस पर विभिन्न विद्वानों की भिन्न-भिन्न विचारधारायें हैं। ऐतिहासिक विकास के परिप्रेक्ष्य में देखने पर मुख्यतया तीन विचारधारायें प्रकाश में आती हैं। पहली विचारधारा कार्लमार्क्स से उद्भूत है जिसके इर्द-गिर्द अन्य शेष दो विचारधारायें घूमती रहती हैं। कार्लमार्कस की मान्यता है कि एशिया की भूदृसमस्या वैसी ही नहीं है जैसी कि यूरोप में है। एशिया की भूमि व्यवस्था सामूहिक स्वामित्व की व्यवस्था है, उस पर राजाओ तथा राजवंशो के बार-बार परिवर्तन होने पर भी सामूहिक स्वामित्व की समस्या अपने उसी अडिग रूप में विद्यमान रही जैसे कि समुद्र के ऊपरी धरातल पर बार-बार परिवर्तन होता रहता है लेकिन समुद्र के गर्भ में एकदम स्थिरता रहती है,उसमें कोई परिवर्तन नही होता। इसी धारणा का समर्थन पार्जिटर, बसाक, आर0 सी0 मजूमदार, तथा हेनरीमैन के विचारो से भी होता है।

दूसरी विचारधारा विटफोगेल की है जो कि कार्लमार्क्स के एकदम विपरीत है।उनकी विचारधारा सिंचाई के साधनो पर अवलम्बित है। इनकी मान्यता है कि जो सिंचाई के साधनो का मालिक होगा वही भूमि का भी मालिक होगा द्यचूंकि राजा सम्पूर्ण सिंचाई के साधनों का मालिक होता था, अतः वही सम्पूर्ण भूमि का स्वामी था। राजा को सम्पूर्ण भूमि का स्वामी वी0 ए0 स्मिथ, जे0 एन0 समद्दर, शामाशास्त्री, हाप्सकिन, व्यूलर आदि विद्धानों ने भी माना है।

तीसरी विचारधारा के0पी0 जायसवाल, आर0एस0 शर्मा, वेडेन पावेल, पी0एन0 बनर्जी, तथा लल्लन जी गोपाल की है जिन्होंने व्यक्तिगत स्वामित्व को ही स्वीकार किया है। उपर्युक्त तीनों विचारधारायें ऐतिहासिक विकास क्रम में एकांगी प्रतीक होती हैं क्योंकि जो विद्वान राजा के स्वामित्व को स्वीकार करते हैं वे यह मानकर चलते हैं कि पूरे विकास क्रम में राजा का ही भूमि पर स्वामित्व था और जो विद्वान सामूहिक और व्यक्तिगत स्वामित्व को स्वीकार करते हैं वे यह मानकर चलते हैं।

वर्ण व्यवस्था

चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सिद्धान्त की पुनरावृत्ति ऋग्वैदिक काल से धर्मशास्त्रों में अनवरत् रूप से होती चली आ रही है। पूर्व मध्यकालीन व्यवस्थाकारों ने भी इस वर्ण व्यवस्था के क्रम का उल्लेख किया है। इस अव्यवस्था के विषय में आधुनिक समाजशास्त्रियों ने अपना अलग-अलग मत दिया है। कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार यह व्यवस्था ब्राहमणों ने ब्राहमणों के लिए किया था, जो उनके द्वारा अपनी स्वतंत्र, विशिष्ट और विशेषाधिकार सम्पन्न स्थिति के निर्माण और निरन्तरता के प्रयास की परिचायक थी। कुछ चिन्तकों ने इसे दास प्रथा पर आधारित बताया। विवेच्ययुगीन परिवर्तित परिस्थितियों में वर्ण व्यवस्था में भी परिवर्तन हुए।

तत्कालीन समाज वर्ण, वर्ग और जातियों में विभक्त था। उसी के चलते लोग एक दूसरे को ऊँच-नीच, श्रेष्ठ-हीन, स्पृश्य-अस्पृश्य समझते हुए आपास में भेदभाव रखते थे। समस्त हिन्दू समाज चार वर्गों में विभक्त था, परन्तु मेगस्थनीज, ईब्नवुर्दहा, अल इदरीस आदि के अनुसार हिन्दू समाज सात वर्गों में विभक्त था। इब्नवुर्दहा ने इन सातों के नाम गिनाये हैं-सब-कुफिया अथवा सबकुत्रिया (सर्वोच्च जाति), जिनको सत्क्षत्रिय भी कहा गया है और ब्राह्मण वर्ण से भी श्रेष्ठ मानी गयी है क्योंकि इसी वर्ण के राजागण होते थे। दूसरे स्थान पर ब्रह्म अथवा ब्राह्मण वर्ण, तीसरे पर क्षत्रिय (कत्रिय), थे पर वँसुरा (जो कृषि का कार्य करते थे), पाँचवें पर सूद्रिय अथवा शूद्र थे जो शिल्प एवं गृह-धन्धों को करते थे, छठे पर सन्दालिय अथवा सण्डालिया जो निम्न कोटि के मुख्य कार्य करते थे और सातवें पर लाहड़ थे जो भ्रमणशील जाति के थे और जिनकी स्त्रियाँ आभरणप्रिय और पुरुष विनोदप्रिय तथा चमत्कारिक खेलों के प्रेमी होते थे। थोड़ा-बहुत लिखावट के अन्तर से अलहदरीस में भी इन्हीं सात जातियों का उल्लेख किया है।

तत्कालीन ब्राह्मण वर्ण की आर्थिक स्थिति ...

तत्कालीन सामाजिक गतिशीलता का एक शक्तिशाली स्रोत राजनीतिक व्यवस्था की अस्थिरता में थी। इस समय अनेकानेक निम्न अज्ञात तथा विदेशी मूल के व्यक्तियों ने राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर स्वयं को छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्यों के शासकों के रूप में प्रतिष्ठित कर लिया।" राजपूत कहलाने वाले इनमें से अनेक का सम्बन्ध आर्य संस्कृति से नहीं था।[12] राजनीतिक अधिकार प्राप्त ये शासक हिन्दू समाज में आत्मसात् हुए थे। भव्य परम्परा के अभाव और नव उद्भव के कारण सामाजिक सम्मान और नवस्थिति के निमित्त वे ब्राह्मणों के मुखापेक्षी थे।[13]

राजसत्ता लेने के बाद उक्त समूह अपने कर्मकाण्डों एवं जीवन शैली के संस्कृतिकरण एवं क्षत्रियत्व का अनुमोदन प्राप्त करने के लिए ब्राह्मणों को प्रश्रय देने के लिए बाध्य था। गुप्तोत्तर काल में ब्राह्मण वर्ग की धार्मिक सत्ता को आर्थिक पोषण के साथ-साथ इस बात की भी शक्ति प्राप्त हुई कि राजनीतिक सत्ता को वैधता प्रदान करने के लिए वे अनिवार्य बन गये। इस युग की अंतिम तीन या चार शताब्दियों की राजनीतिक स्थिति ब्राह्मणों के लिए अत्यन्त सहायक रही, परन्तु यह ब्राह्मण वर्ग की स्थिति का एकपक्षीय विश्लेषण है। भक्तिमार्ग के उदय, श्रौतयज्ञों के अप्रचलन, वाममार्गी विचारधारा के विकास आदि के कारण ब्राह्मणों की न केवल कर्मकाण्डीय श्रेष्ठता, बल्कि सामाजिक आर्थिक स्थिति को भी आघात पहुँचा जिसे उन्होंने विभिन्न पौराणिक कृत्यों का प्रतिपादन कर सुदृढ़ करने का प्रयास किया।

वध दण्ड और ब्राह्मण

पूर्ववर्ती धर्मशास्त्रों में ब्राह्मणों को अवध्य मानने की प्रथा रही, परन्तु इस काल के कुछ स्रोतों में ब्राह्मणों के लिए भी कतिपय अपराधों में वध दण्ड का निर्धारण किया गया है। अबू जैद ने वर्ण विशेष का उल्लेख कन करते हुए अपहरण और बलात्कार करने पर पुरुष पर तथा ऐच्छिक अनैतिक सम्बन्ध पर स्त्री-पुरुष दोनों को मृत्युदण्ड का भागी बताया है। 05 नाडोल लेख (1141 ई0) के अनुसार धालोप गाँव के प्रत्येक बाड़े से दो-दो ब्राह्मण प्रतिनिधियों ने एक पत्रक प्रस्तुत किया था।

इस पत्रक में यह निर्णय लिया गया था कि यदि कोई ब्राह्मण मुखिया चोरी का पता लगाने में सहयोग देना अस्वीकार करेगा तो वह बुरी मौत मरेगा। इस सामूहिक निर्णय पर वहाँ के मंदिरों के भट्टारकों, समस्त महाजनों के प्रतिनिधियों, नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के साक्षी दिये जाने का उल्लेख है।[106] यद्यपि एक अन्य स्थल पर चन्द्रापीड ब्राह्मण वध के अभियोगी-ब्राह्मण को वध दण्ड न देकर अन्य दण्ड देता है।[107] परन्तु दूसरी ओर यह भी सूचना है कि दान देने के उत्कट आग्रह से अथवा वध के भय से द्विजों ने उस नृपाधम से भी अग्रहारों को लिया।[108] चौर पंचाशिका से विदित होता है कि राजकुमारी के साथ अनैतिक सम्बन्धों के अपराध में ब्राह्मण कवि को वध दण्ड दिया गया था।[109] कात्यायन ने एक स्थल पर ब्राह्मण को अवध्य माना है परन्तु भ्रूण हत्या, तीक्ष्ण अस्त्र से ब्राह्मणी अथवा सात्विक स्त्री की हत्या करने पर ब्राह्मण के लिए भी वध दड की आज्ञा दी है।[110] अलबेरूनी ने ब्राह्मण को वध दण्ड से मुक्त बताया है। उसकी सम्पत्ति जब्त कर ली जाती थी। मूल्यवान वस्तुओं की चोरी के अपराध में उसे अन्धा कर दिया जाता था या दायाँ हाथ, बायाँ पैर काट दिया जाता था।[11]

ब्रह्म क्षत्र

विजयसेन के देवपारा लेख में सामन्त सेन को ब्रह्म क्षत्र कहा गया है।[12] सोमेश्वर के वि0सं0 1226 के बिजोलिया लेख के आधार पर चाहमानों को ब्राह्मण माना गया, जिन्होंने बाद में क्षत्रिय धर्म ग्रहण किया।[113] 1278 ई0 के चित्तौड़ के शिलालेख में चाहमानों को क्षत्रिय कहा गया है।[14] पिंगल सूत्र वृत्ति में परमारों को ब्रह्म क्षत्र कुलीन कहा गया है। उदयपुर प्रशस्ति में परमारों के प्रारम्भिक शासक उपेन्द्रराज को 'द्विजवर्ग रत्न' कहा गया है।

पटियाला लेख में प्रतिहारों के आदिपुरुष ब्राह्मण हरिश्चन्द्र का उल्लेख है जिसकी ब्राह्मणी पत्नी के पुत्र ब्राह्मण प्रतिहार

www.ignited.in

और क्षत्रिया रानी के मद्यपान करने वाले कहलाये।[116] परवर्ती अभिलेखों में गुहिलोत अपने को सूर्य वंश और राम वंश का कहते हैं, जबकि इस वंश के संस्थापक गुहदत्त और बप्पा को 977 ई0 और 1274 ई0 के अभिलेखों में विप्र कहा गया है।[117] 1285 ई0 के एक अभिलेख में बप्पा के लिए कहा गया है कि उसने ब्रह्म को क्षात्र धर्म में बदल दिया।[18] अभयतिलकमणी ने क्षात्र-धर्म ग्रहण करने वाले ब्राह्मण को ब्राह्मक कहा गया है।[19] यादव ने इसे अंशतः मातृ और पितृ-सत्तात्मक सिद्धान्तों के बीच संगति और प्रमुखतः ब्राह्मणों के एक भाग द्वारा जाति और धर्म में स्थायी परिवर्तन कर क्षत्रियों के स्तर को प्राप्त करने का प्रयास बताया है।[120] पृथ्वीराजरासो में ऐसे ब्राह्मणों का वर्णन पृथक समूह के रूप में किया गया है। एक स्थल पर वर्णित है कि पंचायन से युद्ध छिड़ा, उसमें व्यूह रचना अनलपंख पक्षी के रूप में की गयी है।

मग ब्राह्मण

इस जाति की भारत में उपस्थिति चौथी-पाँचवीं सदी ई0पू0 से मानी जाती है।[121] भारतीय ग्रन्थों में उल्लिखित शाकद्वीप से आशय ईरान अथवा पूर्वी ईरान से लगाया जाता है। वहीं से वे भारत आये।[122] भारत में इनका आगमन प्रायः शककुषाणकाल से माना जाता है।[123] शाम्बपुराण के अनुसार कृष्ण के श्राप से शाम्ब कुष्ठग्रस्त हो गया जिसके निवारणार्थ नारद ने उसे चन्द्रभाग के तट पर सूर्य मंदिर निर्माण की सलाह दी, परन्तु उस मन्दिर में पौरोहित्य कार्य के लिए कोई पण्डित तैयार नहीं हुआ। तब उग्रसेन के पुरोहित गुरुमुख ने उसे शाकद्वीप से सूर्यपूजक मगों को लाने की सलाह दी। अतः शाम्ब शाकद्वीप गया और वहाँ से अट्ठारह मग परिवारों को लाकर उसने उन्हें पौरोहित्य कार्य में लगाया।[24] पाँचवीं शताब्दी ई0 सन् के बाद से ही मगों का हिन्दू संस्कृति में समावेश हुआ।[125] वराहमिहिर ने बृहत्संहिता में सूर्य-मूर्ति के स्वरूप का जो वर्णन किया, उसमें पारसी लक्षण स्पष्ट है। उसके अनुसार-सूर्य की मूर्ति उदीच्य वेश में बनाई जानी चाहिए, पैर जानुपर्यन्त ढंके रहना चाहिए तथा कमर में अव्यंग हो।[126] इस प्रकार सूर्य-पूजा में मगों के सहयोग से एक नवीन परिवर्तन हुआ। गया जिले में गोविन्दपुर के एक अभिलेख में मगों की सूर्य से उत्पत्ति और शाम्ब द्वारा भारतलाये जाने का उल्लेख है।[127] चचनामा में मुहम्मद कासिम से हिन्दू कहते हैं कि इस नगर का मंदिर ब्राह्मणों के अधीन है। वे हमारे सन्त और चिकित्सक हैं।[128] 'प्रबन्ध चिन्तामणि' में ज्योतिषी वराहमिहिर को ब्राह्मण कहा गया है जिसे सूर्य की कृपा से नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त था।[129]

ब्राह्मणों के लिए प्रयुक्त उपसर्ग

मिराशी ने वेद और शाखा वाले ब्राह्मणों को विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में विभाजित बताया है। उदाहरण के लिए कृष्ण यजुर्वेद या तैत्तिरीय शाखा के ब्राह्मणों का निवास दक्षिण भारत था। सामवेद से सम्बद्ध शांडिल्य गोत्र वाले ब्राह्मणों का सम्बन्ध उत्तरी बंगाल के बोगार जिले से था। इसी प्रकार मध्यदेश में स्थित तिकारी विशेषकर मध्यादीन शाखा वालों का निवास था।[142] 1047 ई0 के गोहरवा फलक में पंडित शांतिवर्मन को उपाध्याय शिलु का पौत्र कहा गया है जिसे कृषि चारागाह योग्य भूमि, वृक्षों, लोहे की खानों आदि के साथ भूमिदान मिला था। पृथ्वीदेव के अमोद पत्रक में भी उपाध्याय का उल्लेख है।[143] यद्यपि अग्निहोत्री वाहभट का पिता दीक्षित देवेश्वर कहा गया है।[44] अलबेरूनी ने तीन अग्नियों की सेवा करने वाले ब्राह्मण को अग्निहोत्रो और इसके अतिरिक्त जो अग्नि में हवन करें उसे दीक्षित कहा गया है।[45] इस प्रकार दीक्षित और अग्निहोत्री में काफी साम्यता थी।

उपरोक्त अभिलेख में भौगोलिक आधार पर भी नागर और माथुर ब्राह्मणों का उल्लेख है।[146] नागर ब्राह्मणों का राजस्थान के अभिलेखों में भी वर्णन है।[147] नागर और श्रीमाल ब्राह्मण क्रमशः गुजरात और राजस्थान के श्रीमाल या मीनमाल से सम्बद्ध कहे गये हैं।[148] राधीय ब्राह्मणों का उल्लेख उड़ीसा से प्राप्त 12वीं सदी के अन्तिम चरणों में एक अभिलेख में मिलता है।[149] राधी और वारेन्द्री ब्राह्मणों की कुल पंजिका में इनके पाँच पूर्वज राजा आदिसुर के आमंत्रण पर वैदिक यज्ञ के सम्पादनार्थ कोलन्च से बंगाल आए थे। राजस्थान से प्राप्त एक अभिलेख में गूगुली ब्राह्मण का उल्लेख है।[51] मागध और माथुर ब्राह्मणों के लिए अत्रिस्मृति में कहा गया है कि यदि वे वृहस्पति के तुल्य हों तो भी पूज्य नहीं हैं।[152] लटकमाला में मिश्र, शुक्ल, महामहोपाध्याय और चतुर्वेद का उल्लेख है।[153] जोनराज कृत राजतरंगिणी में भोल्ल उपजाति के ब्राह्मणों का उल्लेख है।[154] विक्रमांकदेव चरित में काष्ठेल और भट्ट ब्राह्मणों का वर्णन किया गया है।[15] पृथ्वीराजरासो में कवि चन्द बरदाई अपने को भट्ट जाति का बताता है।[156]

अध्ययन का उद्देश्य

1. राजनितिक और सामजिक संरचना का अध्ययन
2. पूर्व मध्यकाल में नारी की स्तिथि एवं वर्ण व्यवस्था पर अध्ययन

निष्कर्ष

वर्ण विभाजित पुरूष प्रधान समाज में नारियों को सम्पत्ति की तरह सुरक्षित रखने और पवित्रता, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिये उन्हें संयमित एवं मर्यादित कर पर्दे में रखने के पीछे उन्हें पराधीन तथा परतन्त्र करने की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है। भारत में सती प्रथा के प्रमाण चौथी शताब्दी ई0पू0 से मिलने लगते हैं, विशेषकर राजधरानों एवं बड़े-बड़े वीरों के परिवार में किन्तु इसका अधिक प्रचलन चौथी से सातवीं शताब्दियों में मिलने लगता है। पूर्वमध्यकाल में कुछ शास्त्रकारों ने सती प्रथा का समर्थन किया है तो कुछ ने इसे आत्महत्या कहकर इसका प्रबल विरोध किया है। मेघातिथि ने सती प्रथा का विरोध किया है तो मिताक्षरा ने सती होना ही श्रेयस्कर माना है। तन्त्र लेखको ने भी इसका विरोध किया है। पूर्वमध्यकालीन भारत के अधिकतर धर्मशास्त्रकार विज्ञानेश्वर की स्त्रीधन की इस परिभाषा से सहमत है किन्तु विश्वरूप, देवण्णभट्ट और जीभूतवाहन विज्ञानेश्वर के विचारों से सहमत नहीं है। भारत और अरब के बीच चिरकाल से व्यापारिक सम्बन्ध चले आ रहे थे और सातवीं शताब्दी के इस्लाम धर्म के अपनाने से पूर्व भी अरब वाले व्यापार तथा वाणिज्य के कारण भारतीय पश्चिमी समुद्र तट के प्रदेशों में आया जाया करते थे जहां उनका हार्दिक स्वागत होता था। अरबों द्वारा मुस्लिम धर्म अपनाने पर भी इनके साथ भारतीयों के व्यावहार में कोई अन्तर नहीं आया। इस्लाम के साथ भारत के प्रारंभिक वाणिज्यीय एवं सांस्कृतिक सम्पर्क का इतिहास स्वयं पैगम्बर के काल तक खोजा जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वही, 4.4.97, 4.4.9.
2. अर्थ0, 7.14, सेतुवार्तागजबन्ध, रघुवंश, 16.2.
3. स्टुअर्ट पीगोट, प्री-हिस्टोरिक इण्डिया, लन्दन, पृ0 70.
4. महा0, सभा0, 5.67, अनु0, 64.6.
5. मनु0, 4.226, 4.202.
6. विष्णुपु0, 5.15 'सेतुनेदकन्श्य 9.279.
7. आर0एस0 शर्मा, लाइट ऑन अर्ली इण्डियन सोसाइटी एण्ड इकोनॉमी, पृ0 90-91.
8. भगवतीसूत्र, 18.10.647.
9. याज्ञ0, 2.160.
10. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलिकालीन भारत, पृ0 258.
11. महाभाष्य, 8.4,8, मनु0, 8.239.
12. मनु0, 9.54.
13. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पूर्वोद्धृत, पृ0 258, सूत्रकृतांग, श्रुतस्कन्ध, अध्याय 11, गाथा 7-8.

Corresponding Author

Pranaw Kumar*

Research Scholar

www.ignited.in